मूल प्राचीन-सत्तर श्लोकी

श्रीमद्भगवद्गीता

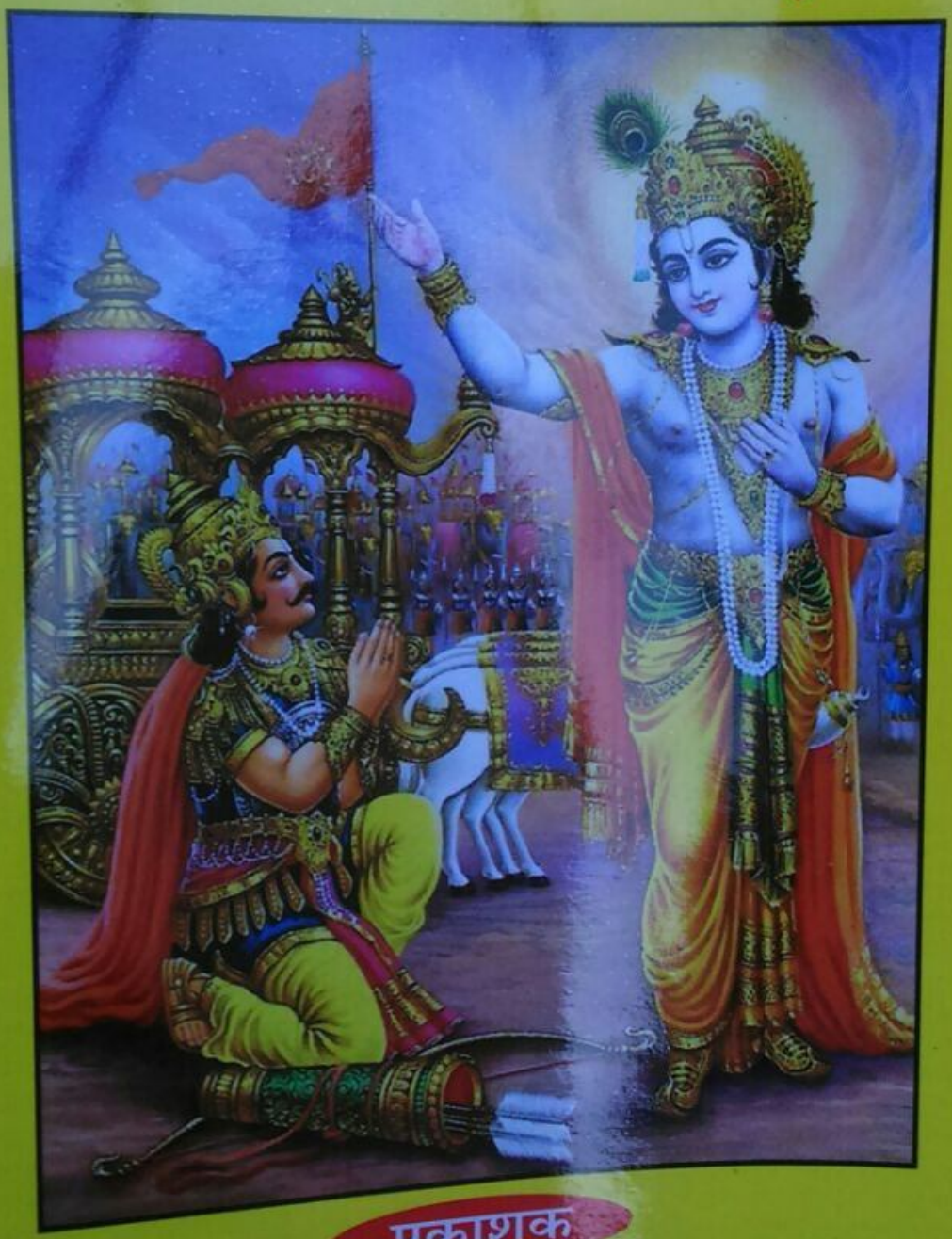

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (हरियाणा)

मूल गीता प्राप्ति के विषय में

महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि ब्यास जी ने 2000 श्लोकों का यह ग्रंथ लिखा था, लेकिन आज के महाभारत में 1,07,399 श्लोक हैं, विद्वान मानते हैं कि श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को युद्धक्षेत्र में खड़े खड़े 700 श्लोकों का लम्बा व्याख्यान नहीं किया।

1912 ई. में डा. नरहर गोपाल सरदेसाई मूल धर्मग्रन्थों की खोज में बाली टापू (इण्डोनेशिया) गए थे कहां 'करंग आसिम' बन्दरगाह में एक हिन्दु राजा के यहां ताड़ पत्रों पर सुरक्षित महाभारत का भीष्म पर्व मिला। उस में भागवत गीता सिर्फ एक ही अध्याय में 23 से 40 ताड़पत्र तक पूर्ण होती है उसी को पाठकों के समक्ष यहां उपलब्ध करवाया है।

इस में गीता के सब मूल सिद्धान्त आ गए हैं तथा कोई विषय भंग कहीं नहीं दिखाई देता।

सम्पादक : प्रोफेसर सुदर्शन कुमार
9416087919

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।1 – 28 (1)
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजन माहवे।1 – 3 3 (2)
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।।3 2 (1)

अर्थ- (अर्जुन ने कहा) हे कृष्ण! अपने निज लोगों को युद्ध की इच्छा से यहाँ पर एकत्र हुए देखकर (मैं दुःखी हो रहा हूँ)। (क्योंकि) इन स्वजनों को मारकर मैं अपना कल्याण नहीं देखता। हे कृष्ण! इस प्रकार की विजय, राज्य और सुख की मुझे तनिक भी आकांक्षा नहीं है।।1।। (अध्याय 1 श्लोक 32, 32)

यदि माम प्रतीकारमशस्त्रं शस्त्र – पाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।।

अर्थ- बल्कि अगर ऐसा हो कि मैं स्वयं न तो बदला लेने वाला बनूँ और न शस्त्रों को हाथ में धारण करूँ, इस दशा में मुझको धृतराष्ट्र की सन्तानें (दुर्योधनादि) मार भी डालें, तो अवश्य मेरा कल्याण हो जाये।।2।। (1/46)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यत्वोत्तिष्ठ परं तप।।

अर्थ- हे पार्थ! तू ऐसा नामर्द मत बन, तुझे यह शोभा नहीं देता। अरे शत्रुओं को ताप देने वाले! अन्तःकरण की इस क्षुद्र दुर्बलता को छोड़कर (युद्ध के लिए) खड़ा हो

जा।।3।। (2/3)

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।। 2 – 11

अर्थ- और हे अर्जुन! जिनके बारे में शोक नहीं करना चाहिए, तू उन्हीं के लिए शोक कर रहा है। तू तो ज्ञानियों जैसे बातें कर रहा है। (पर ज्ञानी नहीं है, क्योंकि) वे पण्डित लोग तो किसी के प्राण जाने, न जाने का शोक नहीं किया करते।।4।। (2/11)

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।

अर्थ- जिस तरह दूसरी देह से इस देह में लड़कपन, जवानी, बुढ़ापा हुआ करते हैं (शरीर की दशा बदलती रहती है) इसी प्रकार इस देहवाला (जीवात्मा) इससे निकलने पर आगे दूसरा देह ग्रहण करता है (ऐसा समझ कर) वे धीर लोग किसी के मरने-जीने का शोक नहीं किया करते।।5।। (2/13)

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभिः।।

अर्थ- असत् से भाव (हस्ती Existence या उत्पत्ति) नहीं हुआ करता और सत् का अभाव नहीं हो सकता। इन दोनों के अन्तर को तत्वदर्शी लोगों ने देख

लिया है।।6।। (2/16)

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।

अर्थ- ये देह (असत होने से) अन्त वाले हैं और शरीर के मालिक (जीवात्माएं) सदा (सत् होने से) नित्य (अन्त न होने वाले) कहे गये हैं। हे भारत! वह (जीवात्मा) तो अविनाशी और अप्रमेय (अचिन्त्य) है, इसलिए (तू उसके मरने या मारे जाने की चिन्ता छोड़कर) युद्ध में डट जा।।7।। (2/18)

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।

अर्थ- (क्योंकि) जो कोई इस (जीवात्मा) को मारने वाला मानता है और जो मारा जाने वाला मानता है, वे दोनों यथार्थ को नहीं जानते (कारण यह कि) वह न तो मरता है और न मारा जा सकता है।।8।। (2/19)

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितु मर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रैयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।।

अर्थ- अपने धर्म का देख करके भी तुझे (युद्ध से) नहीं डिगना चाहिए, (क्योंकि) क्षत्रिय के लिए तो युद्ध रूपी धर्म से बढ़कर कल्याणकारी और दूसरा कोई कर्म नहीं है।।9।। (2/31)

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

अर्थ - अगर तू युद्ध में मारा जाएगा तो स्वर्ग को पाएगा और अगर जीत लेगा तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इसलिए हे कौन्तेय! उठो, युद्ध के लिए निश्चय करके खड़े हो जाओ। 10।। (2/37)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।

अर्थ - तेरा अधिकार कर्म करने ही में है। किन्तु फल भोगने में नहीं है। कर्मो के फलों का कारण मत बनो (अमुक फल मिले यह हेतु मन में रख कर काम करने वाले मत बनो) और तेरा संग अकर्म में न हो अर्थात् कर्म करना छोड़ भी मत देना।।11।। (2/47)

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।

अर्थ - सफलता - असफलता में समान रहना (सफलता होने पर खुशी के मारे फूल कर कुप्पा न बन जाना और असफलता पर दुःख से व्याकुल न होना) चाहिए। ऐसी समता ही ''योग'' है।

(नाना प्रकार के) वेद - वाक्यों से दुविधा में पड़ी हुई

तेरी बुद्धि, जब समाधि में स्थिर और निश्चल हो जाएगी, तब तू योग को प्राप्त कर लेगा।।12।। (2/48 व 53)

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

अर्थ - हे पार्थ! जब वह (योगी मन में आने वाली) सारी कामनाओं को छोड़ देता है आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट रहता है, तब वह ''स्थित - प्रज्ञ'' अर्थात् अचल बुद्धिवाला कहलाता है। ।13।। (2/54)

दुःखेष्वनुद्विग्मनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।

अर्थ - जिसके मन को दुःख में खेद नहीं होता और न सुख में आसक्ति होती है, जिसने प्रीति, भय और क्रोध को छोड़ दिया है, वह मुनि अचल बुद्धि वाला कहलाता है।।14।। (2/56)

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।

अर्थ - निराहारी मनुष्य (जिसे खान, पान या अन्य सुख सामग्री नहीं मिलती) के विषय - भोग तो छूट जाते हैं, परन्तु उसकी वासना नहीं छूटती (मन में उन अप्राप्त विषयों का मनन होता रहता है।) **परब्रह्म परमात्मा को** देख लेने पर वासनाएं भी निवृत्त हो जाती हैं।।15।।

(2/59)

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

अर्थ - सर्वसाधाराण लोगों की जो रात होती है उसमें वे संयमी (परमात्मा के दर्शन करने वाले योगी) लोग जागते हैं और जिस अवस्था में वे दुनियादार लोग जागते रहते हैं वह उन योगियों की रात्रि है।।16।। (2/69)

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।

अर्थ - देवताओं को प्रसन्न करोगे तो वे खुश होकर तुम्हारा कल्याण करेंगे। इस प्रकार एक - दूसरे को प्रसन्न करते हुए परम कल्याण को प्राप्त कर लोगे।।17।। (3/11)

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

अर्थ - यज्ञ से बचे हुए पदार्थो को खाने वाला सन्त सब पापों से छूट जाता है। परन्तु जो लोग केवल अपने लिए ही भोजन पकाते हैं वो मानों अपने पापों को खा रहे हैं।।18।।

(3/13)

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

अर्थ - अपना धर्म खराब, प्रतीत होता हो, तो भी दूसरे के धर्म को बहुत उत्तम प्रकार पालन करने से भी श्रेष्ठ ही है। अपने धर्म में मरना भला है, किन्तु दूसरे का धर्म

भयदायक ही है।।19।। (3/35)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।

अर्थ - हे अर्जुन! मेरे और तेरे भी बहुतेरे जन्म बीत चुके हैं, किन्तु मैं उन सब को जानता हूँ परन्तु हे परम् तप! तुम नहीं जानते।।20।। (4/5)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।।

अर्थ - हे भारत! जब - जब धर्म की (संसार में) कमी और अधर्म की वृद्धि हो जाती है, तब - तब मैं साधुओं की रक्षा करने और दुष्टों का नाश करने के लिए प्रकट होता हूँ।।21।। (4/7 व 8)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।।

अर्थ - मेरे (या मेरे जैसे योगियों का) जन्म और कर्म दिव्य (अद्भुत प्रकार का) है (क्योंकि) न तो कर्म मुझमें (योगी होने से) लिपटते हैं, और न मैं (परम्ज्ञानी होने से) इनमें फंसता हूँ। इस बात को जो कोई ठीक - ठीक जान

लेता है वह देह त्यागने पर पुनर्जन्म को नहीं पाता, किन्तु हे अर्जुन! वह मुझ (परमात्मा) को प्राप्त होता है।।22।।

(4/9 व 14)

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।

अर्थ-कोई कर्म में अकर्म को और अकर्म में कर्म को देखता है वही मनुष्यों में बुद्धिमान है, वही योगी है और कर्मों को (यथार्थतः) करने वाला भी वही है।।23।।(4/18)

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

अर्थ-''यदृच्छा'' (दैव से, अनायास ही) जो कुछ मिल जाये, उसी से सन्तुष्ट हो जाने वाला, ''द्वन्द्व'' (हर्ष-शोक, सुख-दुख आदि) से मुक्त रहने वाला और सफलता-असफलता को एक समान मानने वाला (ज्ञानी पुरूष) कर्मों को करने पर भी (उन) के पाप-पुण्य में नहीं फंसता।।24।। (4/22)

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।।

अर्थ-ऐसे (उस प्रकार से) यती लोग जो तीक्ष्ण व्रतों को धारण करते हैं (अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान

करते हैं, जैसे) कोई द्रव्य-यज्ञ (हवन, यज्ञ, दान, पुण्य) करते हैं और तप-यज्ञ (संसार की भलाई के लिए अपने ऊपर कष्ट उठाने का कार्य) करते हैं और दूसरे कोई लोग स्वाध्याय या ज्ञान-यज्ञ में लग जाते हैं।।25।।(4/28)

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते। 33 (2)
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।। 34(1)

अर्थ-हे पार्थ! सब प्रकार के कर्मों (उक्त व्रतों) की समाप्ति ज्ञान में जाकर हो जाती है। उस ज्ञान को पाने के लिए ज्ञानी गुरू लोगों को प्रणाम करो और सेवा करके प्रसन्न कर लो तब प्रश्न करो तो उस ज्ञान को पाओगे।।26।। (4/33 व 34)

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।।

अर्थ-सन्यास और कर्म ये दोनों ही कल्याण देने वाले हैं (परन्तु) उन दोनों में कर्म संन्यास से बढ़कर है।।27।।

(5/2)

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

अर्थ-(ज्ञान) योग से युक्त मुनि ब्रह्म को बहुत जल्दी पा जाता है (क्योंकि) उस (मुनि) की दृष्टि ऐसी हो जाती है कि वह सब भूतों (प्राणियों) के आत्मा में उस ''भूतात्मा'' (सब वस्तुओं में व्यापक परमात्मा) को

देखता रहता है अतः वह (ज्ञानी) कर्म करने पर भी उसमें नहीं फसता।।28।। (5/6, 7)

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं। नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

अर्थ-अपने द्वारा अपना उद्धार करे स्वयं को अधोगति डाले। स्वयं आप ही अपना मित्र व अपना ही शत्रु ।। (6/5)

ोगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।।

अर्थ-योगी (परमात्मा से मिलने की इच्छा वाला ज्ञानी रूष) अकेला रहता हुआ, गुप्त स्थान में निवास करता आ, विषयों से बचता हुआ, परिग्रह (दूसरों से सहायता) न लेता हुआ, आत्मा (परब्रह्म परमात्मा) के साथ जुट जावे (मेल-मिलाप कर लेवे)।।30।। (6/10)

समंकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। 6/13
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।
यथा दीपो निवातस्थो नेगंते सोपमा स्मृता।। 19/1

अर्थ-(वह योगी ऐसा आसन लगाकर योग करने के लिए बैठे कि) सारा शरीर और गला सीधा रहे, हिलने डोलने न पावे (बल्कि) बिल्कुल स्थिर रहे और अन्य किसी भी दिशा की ओर न देखता हुआ केवल अपने नासिका के अगले भाग को देखता हुआ, वह शरीर को ऐसा अचल रखे

जैसे दीपकों की ज्योति हवा न चलने पर स्थिर रहा करती है।।31।। (6/13 व 19/1)

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

अर्थ-हे अर्जुन! सुख हो या दुख जो कोई अपने भांति सब जगह सब लोगों को (अपने ही) सम देखता है वह ''परम् योगी'' माना जाता है।।32।।(6/32)

यो मां पश्यति सर्वत्र च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।

अर्थ-जो कोई (योगी या भक्त) मुझ (परमात्मा) को सब जगह और सबको मुझमें देखता है उसके लिए मैं (परमात्मा) अदृश्य नहीं हूँ और न वह मुझको अदृश्य है।।33।। (6/30)

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।

अर्थ-मेरी (परमात्मा की) आठ प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रकृति (शक्ति) है उनके नाम सुनो-(1) भूमि (2) जल (3) अग्नि (4) वायु (5) आकाश (6) मन (7) बुद्धि (8) अहंकार। मैं (परमेश्वर) ही इस सारे (उक्त आठ प्रकृतियों वाले) जगत की रचना और प्रलय

करने वाला हूँ।।34।। (7/4, 6)

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोक्तम्। सूत्रे मणिगणा इव।।

अर्थ-हे धनंञ्जय! मुझ (परमात्मा) से बढ़कर और कोई भी नहीं है (मुझमें ही) यह सब सूत में मणियों की भाँति पिरोया हुआ है।।35।।(7/7)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय! प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरूषं नृषु।।

अर्थ-हे कौन्तेय! मैं पानी में रस (रूप से मौजूद) हूँ। चन्द्र-सूर्य में प्रभा (किरण या प्रकाश) हूँ। सब वेदों में श्रवण करने योग्य(प्रणव) हूँ। आकाश में शब्द हूँ और मनुष्यों में पुरूषार्थ हूँ।।36।।(7/8)

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।

अर्थ-पृथिवी में मैं उत्तम सुगन्ध हूँ, अग्नि में तेज (रूप से विद्यमान) हूँ। सब भूतों (प्राणियों) में जीवन हूँ और तपस्वियों में तप (रूप से विराजमान हो रहा) हूँ।।37।। (7/9)

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। 10(2)
बलं बलवतां चाहम का कामरागविवर्जितम्।। 11(1)

अर्थ-बुद्धि वालों में बुद्धि, तेज वालों में तेज और बल

वालों में काम और राग से रहित बल मैं ही हूँ।।38।। (7/10 व 11)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। 16
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। 19(2)

अर्थ-हे अर्जुन! चार प्रकार के सुकृति (धर्मात्मा) लोग मुझ (परमेश्वर) को भजते हैं। (1) आर्त (दुखी), (2) जिज्ञासु (ब्रह्म को जानने की इच्छा वाले) (3) अर्थी (कामना वाला) और हे भारतवंशी! चौथा ज्ञानी। फिर उन सबमें कौन बढ़कर है? वह पूर्ण ज्ञानी महात्मा, जो यह समझ लेवे कि सब कुछ वासुदेव (परमात्मा) ही हैं।।39।।(7/16, 19)

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ये ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।

अर्थ-जो लोग जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु से छूट जाने (मुक्ति पाने) के लिए मेरा (परमात्मा का) सहारा लेकर यत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान को और सब कर्मो को जान लेते हैं।।40।। (7/29)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।

अर्थ-जो कोई अन्तराल (मरते समय) मेरा (परमात्मा ही का) स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ जाता है, वह मेरे

भाव (मुक्ति धाम) को प्राप्त करता है इसमें कुछ भी संशय नहीं हैं।।41।।(8/5)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनो बुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।

अर्थ-इसीलिए सब काल में मुझ (परमात्मा) में मन और बुद्धि को अर्पित करके मुझको ही स्मरण करता हुआ युद्ध करे तो निस्सन्देह मुझको ही प्राप्त करेगा, अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेगा।।42।।(8/7)

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरूध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।

अर्थ-सब द्वारों (आँख कान.. आदि) को संयम करके, मन को हृदय में रोककर अपने प्राणों को मूर्धा (शिर) में चढ़ाकर योगाभ्यास में लग जाये।।43।।(8/12)

इदं तू ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।

अर्थ-हे निष्पाप अर्जुन! तुझको हम अब इससे भी और उत्कृष्ट ज्ञान, जो विज्ञान के सहित है, सुनाते हैं जिसको जान करके तू अशुभ बातों से छूट जायेगा।।44।।(9/1)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।। 9/16

वेद्यं पवित्रोंकार ऋक् साम यजुरेव च।। 17(2)

अर्थ-मैं (परमात्मा) ''यज्ञ'' हूँ, मैं ही ''क्रतु'' हूँ, मैं ही ''स्वधा'' हूँ मैं ही औषधि'' (हवन सामग्री) हूँ, मैं ही ''मन्त्र'' हूँ, मैं ही ''आज्य'' (घृत) हूँ, मैं ही ''अग्नि'' हूँ और यज्ञ में आहुत हुआ सामान (भी) मैं ही हूँ, मैं ही जानने योग्य पवित्र ''ओंकार'' हूँ और मैं ही ऋक्, साम, यजुर्वेद भी हूँ।।45।।(9/16 व 17)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्पस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।

अर्थ-है कौन्तेय! जो काम तू करे, जो कुछ खाये, जो कुछ होम करे, जो कुछ दान करे और जो कुछ तपस्या करे, वह सब (उन पुण्य-कर्मो का फल) मुझे (परमात्मा को) अर्पण कर दे।।46।।(9/27)

ज्योतिषामहमंशुमान्, नक्षत्राणामहं शशि।।

अर्थ-ज्योति (प्रकाश) वालों में मैं किरणों वाला (सूर्य) हूँ। नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ।।47।।(10/21)

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्। 23 (1)
महर्षीणां भृगुरहं, मेरुः शिखरिणामहम्।। 25(1)

अर्थ-रुद्रों में मैं शंकर हूँ, यक्ष राक्षसों में मैं कुबेर हूँ। महर्षियों में मैं भृगु हूँ और शिखरवालों में मैं मेरु पर्वत हूँ।।48।।(10/23 व 25)

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। 25(1)
उच्चैः श्रवसमश्वानां सिद्धानां कपिलो मुनिः।। 27(1)

अर्थ - सब वृक्षों में मैं पीपल हूँ, देवऋषियों में मैं नारद हूँ। घोड़ों में मैं उच्चैः श्रवा (ऊँचे कानों वाला घोड़ा) हूँ। सिद्ध लोगों में मैं कपिल मुनि हूँ।।49।।(10/26 व 27)

ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्। 27(2)
आयुधानामहं वज्रं सर्पाणामस्मि वासुकिः।। 28

अर्थ - हाथियों में मैं ऐरावत हूँ, मनुष्यों में मैं राजा हूँ। आयुधों (शस्त्रों) में मैं वज्र हूँ और सर्पो में मैं वासुकि हूँ।।50।।(10/27 व 28)

वरूणो यादसामहम्, यमः संयमतामहम्।
प्रह्लाद सर्वदैत्यानां कालः कलयतामहम्।।

अर्थ - पानी के जीवों में मैं वरूण हूँ, नियमन (न्याय) करने वालों में मैं यम हूँ। सब दैत्यों में मैं प्रहलाद हूँ, गणना करने वालों में मैं काल हूँ।।51।।(10/29,30)

मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।।
अक्षराणामकारोऽस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽमृतूनां कुसुमाकरः।।

अर्थ - वन के पशुओं में मैं सिंह हूँ। पक्षियों में मैं गरूड़ हूँ, अक्षरों में मैं ''अ'' हूँ। शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ। महीनों में मैं मार्गशीर्ष तथा ऋतुओं में बसन्त हूँ।।52।।
(10/30,31,33,35)

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।।

अर्थ - वृष्णी वंशवालों में मैं वासुदेव अर्थात् श्री कृष्ण हूँ। पाण्डवों में मैं अर्जुन हूँ। मुनियों में मैं व्यास हूँ और कवियों में मैं उशना कवि हूँ।।53।।(10/37)
''औषधिनाम''। (वर्तमान गीता में यह शब्द कहीं नहीं है)

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।।

अर्थ - हे बड़े तपस्वी अर्जुन! (निदान कहाँ तक गिनायें, वस्तुतः तो) मेरे (परमात्मा के) इन दिव्य विभूतियों का अन्त ही नहीं है।।54।। (10/40)

ष्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।।

अर्थ - हे अर्जुन! (मेरी विभूतियों को समझ लेने पर अब) तू मेरे (परमात्मा के) अनेक प्रकार के रंगों और आकारों वाले सैकड़ों, हजारों रूपों को देख।।55।।(11/5)

न तु मां शक्ष्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्।।

अर्थ - परन्तु मुझ (परमात्मा) को तू इन आँखों (चर्म चक्षुओं) से तो नहीं देख सकता, (इसलिए) तुझको मैं ''दिव्यचक्षु'' देता हूँ। अब मेरे योग के ऐश्वर्य को देख।।56।।(11/8)

अनेकवक्त्र नयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।।

अर्थ - अनेकों मुखों और आंखों वाला है और अनेकों प्रकार का दीखता है। अनेकों उसके दिव्य भूषण वस्त्र हैं। ओर अनेकों आयुधों (शस्त्रों) से वह सुसज्जित है।।57।।
(11/10)

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा,
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।।

अर्थ - जिस प्रकार नदियों का जल - प्रवाह बड़े वेग के साथ समुद्र की ओर दौड़ा चला जाता है, उसी प्रकार (हे विराट् रूप भगवान!) ये मनुष्य लोग - शूर - वीर आदि (बड़े वेग से) आपके मुखों में प्रवेश करते चले जा रहे हैं।।58।।(11/28)

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंग, विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।

अर्थ - जैसे जलते हुए दीपक की ओर कीट - पतंग व मच्छर आदि नष्ट होने के लिए बड़े वेग से दौड़े चले आते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी नष्ट होने (मरने) के लिए आपके मुख में बड़े वेग से घुसते चले जा रहे हैं।।59।।(11/29)

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो, लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्त्रकृत्वः नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते।।

अर्थ - (हे बड़े अद्भुत रूप वाले!) आप ऐसे उग्र (तेज तर्रार - तीक्ष्ण, काल) रूप वाले कौन हैं? (मैं समझता हूँ कि यहां पर आप इन सब लोगों को समेट लेने के लिए प्रवृत्त हो रहे हैं!!! आपको नमः हो (नमस्ते) नमः हो, हजार बार नमः हो, आपको आगे से नमः हो और पीछे से भी नमः होवे।।60।।(11/31, 32, 39, 40)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा।।

अर्थ - हे अर्जुन! मेरे (परमात्मा के) जिस अद्भुत रूप को तूने अभी देखा है, वह ऐसा है कि उसे कोई न तो वेदों को पढ़ने से, न तप से, न दान से और न यज्ञ करने से ही देख सकता है।।61।। (11/53)

मत्कर्मकृत् मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।

अर्थ - हे पाण्डव! जो कोई मेरे (परमात्मा के) लिए कर्म करता है (निष्काम कर्मी बनता है) मेरा (परमात्मा का) भक्त बन जाता है, सब भूतों (प्राणियों) से निर्वैर (शत्रुता न रखने वाला) और संग रहित (किसी से ज्यादा प्रेम न रखने वाला) बन जाता है, वह ही मुझ (परमात्मा) को प्राप्त करता है। (परमात्मा का दर्शन कर लेता

है)।।62।।(11/55)

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते।।

अर्थ-वह आत्मा (परमात्मा) सर्वत्र (देह के रग रग में) ठहरा हुआ है परन्तु इससे उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार आकाश सब जगह रहने पर भी सूक्ष्म होने से (किसी वस्तु के साथ) लिप्त नहीं होता।।63।।(13/32)

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।

अर्थ-जिस प्रकार अकेला एक सूर्य सब लोकों को प्रकाशित करता है। हे भारत! उसी प्रकार वह क्षेत्रों (परमात्मा इस सारे क्षेत्र) समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रहा है।।64।।(13/33)

सत्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।।

अर्थ-हे भारत! (तीन गुण मनुष्य के शरीर के अन्दर रहते हैं-सत्व, रज, तम) सत्व गुण जब बढ़ जाता है तो सुख में लगाता है। रजो गुण कर्म में लगाता है और तमो गुण ज्ञान को छिपा करके प्रमाद (आलस्य) में लगा देता है।।65।।(14/9)

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।

अर्थ- सत्व गुण वाले ऊपर को जाते हैं। रजो गुण वाले मध्य में रहते हैं और खराब वृत्तियों वाले तमोगुणी लोग नीचे को जाते हैं।।66।।(14/18)

समदुःख-सुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरतुल्य निन्दात्मसंस्तुतिः।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।

अर्थ-गुणातीत (उक्त तीनों गुणों की पहुंच से आगे बढ़ जाने वाला) वह कहलायेगा, जो सुख-दुख को बराबर समझे, जो स्वस्थ, अपने अन्दर रमण करने-वाला हो, जो ढेला, पत्थर, सोना, चाँदी को समान मानता हो, जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता हो, धीर (धैर्य रखने वाला) हो जो अपनी निन्दा और स्तुति को बराबर मानता हो।।67।।

जो मान और अपमान को तुल्य (एक समान) जानता हो, जो मित्र-शत्रु के पक्ष को तुल्य रखता हो, और (सबसे बढ़ कर यह कि) जो सब (प्रकार के) कार्यों के कर्तापन को त्याग चुका हो (ऐसा महात्मा) परमेश्वर का दर्शन करने का पात्र (गुणातीत) माना जायेगा।।68।।

(14/24 व 25)

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थ- जो कोई अव्यभिचारी (डाँवाडोल न होने वाली) भक्ति योग द्वारा मेरी (परमात्मा की) सेवा (उपासना) करता है वह इन (तीनों) गुणों को पार करके मुक्ति को प्राप्त करता है।।69।।(14/26)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्थ-सब धर्मो को छोड़कर केवल एक मेरी (परमात्मा की) शरण में आ जा, मैं तुझको सब पापों से छुड़ा दूंगा, चिन्ता मत कर।।70।।(18/66)

(सर्वत्र ब्रह्म को व्यापक देखने का अभ्यास करते-करते अब और आगे बढ़े और वर्णाश्रम के धर्मो और कर्त्तव्य कर्मो के बन्धन की परवाह छोड़कर सारा समय और अपनी सारी शक्ति ब्रह्म में तन्मय हो जाने (समाधि आदि) में लगा दे (उसके शरण में चला जाना यही है) तो परमात्मा पापों से छुड़ा देंगे।

इसकी पुष्टि के लिए-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसशयाः।
क्षीयन्ते चात्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

भावार्थ-परमेश्वर साक्षात्कार से सब संशय व कर्म मिटते हैं।(4-8)

भगवदगीता समाप्ताः

गीता सार

- इस ससांर में धर्मयुद्ध हेतु आये हो। परमेश्वर का स्मरण करते हुए अधर्म से लड़ते रहो।
- अमुक फल मिले ये विचार मन से निकाल कर अपने कर्तापन को त्याग कर सदकर्म करो व परमेश्वर को समर्पित करते रहो।
- कर्मयोग सन्यास से उत्तम है
- न जन्म पर ज्यादा खुश हो न मृत्यु पर दुखी हों।
- ढेला-पत्थर, सोना-चांदी, मित्र-शत्रु, निंदा-प्रशंसा आदि को समान समझो।
- प्रीत, भय और क्रोध को छोड़कर समता योग धाारण करो।
- आत्मा अमर है। इस देह के जर्जर होने पर यह नई देह धारण करता है। हमारे अनेकों जन्म हो चुके जिसे परम योगी जानते हैं।
- जो सब जगह और सब में परमात्मा को देखता है उसके लिए परमात्मा अदृश्य नहीं है।
- जो कोई अंत समय परमेश्वर को याद रखता है वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।
- शरीर के सब द्वारों का संयम कर के, चेतना को मूर्धा में चढ़ाकर योगाभ्यास करो (गुरु की देखरेख में)। इससे स्पष्ट है श्री कृष्ण स्वयं परमयोगी थे। उन्होंने अपने सम्पूर्ण उपदेश में एक बार भी अपनी प्रतिमा की पूजा कराने की बात नहीं कही।
- तत्वज्ञानी गुरू से दिव्यदृष्टि प्राप्त करके भक्ति योग के द्वारा मोक्ष संभव है।

(बिना गुरू के ग्रंथ भी अपना भेद नहीं देते)